IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

अद्वैतवेदान्त में प्रत्यक्ष-सम्प्रत्यय

डॉ. गोविन्द प्रसाद मिश्र

विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर , दर्शनशास्त्र विभाग

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक, म.प्र.

drgovindmishra@gmail.com

शोध सार:

भारतीय दार्शनिक चिन्तन में अविद्या समस्त दुखों का मूल कारण है | अविद्या एवं उसके संस्कारों को नष्ट करके सत्यज्ञान का बोध कराना ही भारतीय दर्शन का उद्देश्य है | यहाँ सत्य एवं असत्य के निर्णय हेतु लक्षण एवं प्रमाणों का निर्देश है- 'लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः | प्रमाणों के द्वारा सत्यासत्य परीक्षण ही न्याय है- प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्याय:[i]| भारतीय दर्शन में यथार्थ ज्ञान (प्रमा) प्राप्ति के साधन को प्रमाण कहा गया है जिनमे प्रत्यक्ष ,अनुमान,शब्द,उपमान.अर्थापत्ति , अनुपलब्धि आदि प्रमाण प्रमुख हैं| यद्यपि प्रमाणों की संख्या के सम्बन्ध में सभी दर्शनों में मतैक्य नहीं है, नास्तिक चार्वाक केवल एक (प्रत्यक्ष) , बौद्ध एवं वैशेषिक दर्शन दो (प्रत्यक्ष,अनुमान), जैन, सांख्य, योग, रामानुज तीन (प्रत्यक्ष ,अनुमानएवं शब्द), न्याय दर्शन चार (प्रत्यक्ष ,अनुमान,शब्दएवं उपमान.) प्रभाकर मीमांसा पांच (प्रत्यक्ष ,अनुमान,शब्द,उपमान एवं अर्थापत्ति ,), भट्ट मीमांसा एवं अद्वैत वेदान्त छः (प्रत्यक्ष ,अनुमान,शब्द,उपमान.अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि) ,तथा पुराण आठ प्रकार के प्रमाण (प्रत्यक्ष ,अनुमान,शब्द,उपमान.अर्थापत्ति , अनुपलब्धि, ऐतिह्य एवं संभव) मानते हैं | प्रमाणों की संख्या में मतभेद होने के बावजूद सभी ने प्रत्यक्ष को ज्ञान का प्रथम साधन स्वीकार किया है | इसप्रकार प्रत्यक्ष को प्रथम/सर्वश्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार करने में सभी वैदिक या वैदिकेतर दर्शन एक मत हैं यद्यपि प्रत्यक्ष के स्वरूप को लेकर उनमे आपसी मतभेद विद्यमान हैं |

बीज-शब्द-प्रमा ,प्रमाता ,प्रमेय, प्रमाण, प्रत्यक्ष ,सन्निकर्ष |

प्रमाण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्गपूर्वक , 'मा' धातु और 'ल्युट' प्रत्यय के योग से हुई है | ल्युट प्रत्यय का अर्थ है - साधन या करण | प्रमा की प्राप्ति जिस साधन से हो उसे प्रमाण कहते हैं – प्रमीयतेऽनेन इति प्रमाणं | दूसरे अर्थ में प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं- प्रमाकरणं प्रमाणं[ii] |योगकारिका[iii] तथा योगवार्तिक [iv]आदि ग्रन्थों में भी प्रमाण से यही आशय है |प्रमाणों से ही प्रेमेयों की सिद्धि होती है- प्रमेयसिद्धि प्रमाणाद्धि [v]|भगवान कृष्ण ने भी गीता में प्रमाण को साधन स्वीकार करते हुए कहा है कि -तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।[vi]अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में तेरे (अर्जुन के) लिये शास्त्र ही प्रमाण है अर्थात ज्ञान प्राप्त करने का साधन है।

आस्तिक एवं नास्तिक दोनों मत के भारतीय दर्शनों में प्रमाणों की संख्या के विषय में कुछ न्यूनाधिक भाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे- (1) चार्वाक दर्शन में केवल प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण है। (2) बौद् एवं वैशेषिक मत में प्रत्यक्ष, और अनुमान दो ही प्रमाण है।[vii]

(3) सांख्य- योग दर्शन [viii]एवं विशिष्ट-अद्वैतवादी रामानुज के मत में प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द इन तीन प्रमाणों को माना गया है।

(4) न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द चार प्रमाण है।[ix]

(5) मीमांसा दर्शन में प्रभाकर मिश्र प्रत्यक्ष अनुमान, उपमान ,शब्द और अर्थापत्ति ये पाँच प्रमाण मानते है जबकि (6) कुमारिल भट्ट मीमांसा तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द अर्थापत्ति और अनुलब्धि इन छः प्रमाणों को स्वीकार किया गया है | पुराणों में ऐतिह्य और सम्भव नामक दो अतिरिक्त प्रमाण मानकर कुल आठ प्रमाणों को मान्यता दी गई है।

भारतीय दर्शन में मान्य छः प्रमाणों का उल्लेख वेदान्त कारिका में इस प्रकार किया गया है-

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगतौ पुनः ।
अनुमानं च तच्चापि सांख्याः शब्दब्य ते उभे।
न्यायैकदेशिनोऽप्येवमुपमानञ्च केवलम् ।
अर्थापत्या सहैतानि चत्वार्याहुः प्रभाकराः ।
अभावष्टान्येतानि भट्टावेदान्तिनस्तथा ।
सम्भवैतिध्ययुक्तानि इति पौराणिका जगुः। [x]

ज्ञान के उपर्युक्त सभी साधनों / प्रमाणों में प्रत्यक्ष सभी प्रमाणों का मूल स्तम्भ है। प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग सभी दर्शनों में साक्षात् रूप से प्राप्त होने वाले यथार्थ ज्ञान(प्रमा) और उसके साधन (प्रमाण) दोनों के लिए होता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष 'प्रमा' भी है और 'प्रमाण' भी। प्रत्यक्ष का लक्षण करते हुए महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में कहा है कि जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिवा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता है; इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते है। - 'इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्' [xi]अर्थात् इन्द्रिय (चक्षुः,श्रोत आदि) तथा रूपादि अर्थ (विषय) के संयोगादि सन्निकर्ष (सम्बन्ध) से उत्पन्न ज्ञान जो शाब्दबोधातिरिक्त अर्थात् अव्यभिचारि तथा व्यवसायात्मक ज्ञान है वह प्रत्यक्ष कहलाता है। इस प्रकार न्याय दर्शन में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न,

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

अव्यपदेश, अव्यभिचारी तथा व्यवसायात्मक ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा गया है। वाचस्पति मिश्र के अनुसार अव्यपदेश्य एवं व्यवसायात्मक शव्द से तात्पर्य क्रमशः निर्विकल्पक एवं सविकल्पक प्रत्यक्ष से है |[xii]अव्यभिचारी शब्द अप्रमा से अंतर हेतु है |अन्नंभट्टने भी इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न होने वाला ज्ञान 'प्रत्यक्ष' है। तथा वह निर्विकल्पक सविकल्प के भेद से दो प्रकार का है।[xiii]प्रत्यक्ष लक्षण में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि प्रत्यक्ष को दूसरे अनुमिति आदि ज्ञानों से भिन्न किया जा सके।

न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ने प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए आत्मा का मन से , मन का इन्द्रिय से और इन्द्रिय का विषय से सन्निकर्ष आवश्यक मानते हुए प्रत्यक्ष की प्रक्रिया इस प्रकार दी है - 'आत्मा मनसा सयुज्यते । मन इन्द्रियेण । इन्द्रियमर्थेनेति।'[xiv]

यद्यपि यहाँ प्रत्यक्ष के लिए तीन सन्निकर्ष है किन्तु उसमें अन्तिम इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष को ही प्रत्यक्ष ज्ञान का कारण माना गया है क्योंकि प्रथम दो सन्निकर्षों की आवश्यकता तो प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य प्रमाणों में भी होती है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण -

अद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रत्यक्ष विषयक न्याय की उपर्युक्त परिभाषा को स्वीकार नहीं किया गया है। इनके अनुसार इस परिभाषा में अव्याप्ति दोष उत्पन्न हो जाता है; क्योंकि प्रत्यक्ष के लिये ज्ञानेन्द्रिय और ज्ञेय वस्तु के बीच सन्निकर्ष होना आवश्यक है | ऐसे में भौतिक इन्द्रियों से सन्निकर्ष न हो पाने वाला ईश्वर जो सर्वव्यापी, अनादि और अनन्त है, वह प्रत्यक्ष का विषय बनने से वंचित रह जाता है अर्थात् ईश्वर प्रत्यक्ष का विषय नहीं हो सकता है। ब्रह्म चैतन्य सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सर्वव्यापी होता है | इस समस्या को देखते हुए आगे चलकर नव्य नैयायिकों ने प्रत्यक्ष प्रमा की दूसरी परिभाषा दी- "ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्ष।"[xv]जिस के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान वह ज्ञान है जिसमें ज्ञान करण नहीं हो | प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये किसी दूसरे ज्ञान को करण बनाने की आवश्यकता नहीं होती, वेदान्ती प्रत्यक्ष की यह दूसरी परिभाषा भी स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी आपत्ति यह है कि प्रत्यक्ष प्रमा ब्रह्म चैतन्य का पर्यायवाची है, ब्रह्म चैतन्य ही प्रत्यक्ष प्रमा है |

अद्वैत वेदान्त दर्शन में ब्रह्म ही एक मात्र पारमार्थिक सत्य है जिसका ज्ञान ही एक मात्र सत्य ज्ञान है विषय रूप जगत काहमारा स्थूल अथवा सूक्ष्म ऐन्द्रिक ज्ञान मिथ्या है। पारमार्थिक सत्ता का ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है | यह सत् ज्ञान अज्ञेय नहीं है वरन यह हमारी आत्मा ही है और आत्मा स्वयं प्रकाशमान है इसलिए यह अपने यथार्थ रूप में ज्ञात किये जाने योग्य एक मात्र सत है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

न्याय दर्शन की परिभाषा को देखते हुए यदि प्रत्यक्ष के सम्बन्ध में यह प्रश्न किया जाय कि प्रत्यक्ष का मूल कारण या करण क्या है इन्द्रिय या इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष?प्राचीन न्याय के अनुसार इन्द्रिय का अर्थ के साथ सम्बन्ध ही प्रत्यक्ष का कारण है। नव्य नैयायिक इन्द्रिय को प्रत्यक्ष का कारण मानते हैं। केशव मिश्र दोनों विचारों को मिलाते हुए कहते हैं कि इन्द्रिय और इन्द्रिय का अर्थ के साथ सम्बन्ध विशेषकर निर्विकल्प और सविकल्प प्रत्यक्ष का कारण है।

न्याय के मत में प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय जन्य होता है। न्याय में मन को इन्द्रिय माना गया है जबकि अद्वैत वेदान्त में मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण के ही नाम है जो उसके विभिन्न कार्यों को प्रकट करते हैं। अन्तःकरण इन्द्रिय नहीं है। " यदि इन्द्रिय जन्य ज्ञान प्रत्यक्ष हो और मन को इन्द्रिय माना जाय तो अनुमिति ज्ञान भी प्रत्यक्ष होजायेगा।

नैयायिकों द्वारा मन को एक इन्द्रिय माने जाने के मत का खंडन करते हए वेदान्ती कहते हैं कि किसी वस्तु की सिद्धि प्रमाण से होती है। अतः नैयायिकों ने मन को इन्द्रिय तो मान लिया पर उसके लिये कोई प्रमाण नहीं दिया। अत: प्रमाण न होने के कारण मन में इन्द्रियत्व की सिद्धि नहीं होती। नैयायिक मन को निरवयव मानते हैं जबकि वेदान्ती मन या अन्तःकरण को सावयव मानते हैं।वह सादि द्रव्यों से बना है | सादि द्रव्य से बने हुए अन्तःकरण की वृत्ति श्रुति तथा तर्क से सिद्ध है।[xvi]पुनः, अन्तःकरण के साक्षित्व के लिये 'तत् मनोऽसृजत" श्रुति प्रमाण है।[xvii]वेदान्त का मत है किइन्द्रिय-अर्थ सन्निकर्ष ही प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक नहीं है।

वेदान्त परिभाषा के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो चैतन्य पदार्थों के विषय में बिना किसी माध्यम के और साधारणतः इन्द्रियों की क्रिया के द्वारा चैतन्य को प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष नहीं अपितु अन्तःकरण की वृत्ति का होना आवश्यक है | जिस प्रकार तालाब का जल छिद्र से निकल कर नाली का आकार धारण करता हुआ खेत में आता है और खेत की आकृति के सामान जल की भी आकृति हो जाती है ठीक वैसे ही अन्तःकरण भी इन्द्रियों के बाहरनिकलकर घटादि देश में जाता है और घट का आकार धारण कर लेता है। इस अन्तःकरण के परिणाम को अन्तःकरण की वृति कहते हैं।

हम जो कुछ प्रत्यक्ष करते हैं वह वृत्ति (विषय के आकार के रूप में परिणत हुआ अन्तःकरण) के ऊपर निर्भर करता है। यदि वृत्ति पदार्थ की आकृति धारण करती है तो हमपदार्थ का प्रत्यक्ष करते हैं, जैसे यदि लाल रंग की वृत्ति है तो हमें लाल रंग का प्रत्यक्ष होता है। जब हम किसी घड़े को देखते हैं तो अन्तःकरण उसकी ओर अग्रसर होता है उसे अपने प्रकाश से प्रकाशित करता है। उसकी आकृति धारण करता है और इस प्रकार उसका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है | वृत्ति का विषयाकार हो जाना ही प्रत्यक्ष का हेतु है।

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

वेदान्तानुसार आतंरिक विषयों जैसे सुख-दुःख का ज्ञान भी वृत्तियों द्वारा ही होता है, किन्तु उनके ज्ञान में वृत्ति को बाहर नहीं जाना पड़ता है। सुख-दुःख का ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान है | स्पष्ट है कि इन्द्रिय-अर्थ सन्निकर्ष ही प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक नहीं है।

वेदान्त का निश्चित सिद्धान्त है कि ज्ञान निर्विषयक नहीं होता है. मिथ्या ज्ञान का भी विषय होता है। प्रत्यक्ष या अपरोक्ष ज्ञान में ज्ञेय वस्तु की सत्ता अवश्य होती है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि ज्ञेय वस्तु का इन्द्रियों से ही ग्रहण हो। जीव का अपना स्वयं प्रत्यक्ष होता है, परन्तु इसी कारण अहं प्रत्यय को इन्द्रियों का विषय नहीं कह सकते।[xviii]

ब्रह्म ज्ञान के सम्बन्ध में सर्वम् खलु इदं ब्रह्म स्वीकार करने वाले वेदान्त दर्शन की मान्यता है कि वह (ब्रह्म) अनादि और सर्वव्यापक होने से सदा सर्वदा विद्यमान है। उस ब्रह्म चैतन्य रूप प्रत्यक्ष प्रमा के लिये यद्यपि ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती लेकिन उस अनादि ब्रह्म चेतना की अभिव्यक्ति अन्तःकरण की वृत्ति के बिना नहीं होती। घटावछिन्न चैतन्य घट देश में विद्यमान है, फिर भी घटाकार वृत्ति हुए बिना उस चैतन्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। ब्रह्म चैतन्य रूप प्रत्यक्ष प्रमा की उत्पत्ति के लिये अन्तःकरण की वृत्ति की आवश्यकता तो नहीं होती, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति के लिये अन्तःकरण की वृत्ति का होना आवश्यक है और घटाकार अन्तःकरण वृत्ति भी नेत्रादि इन्द्रियों की सहायता के बिना सम्भव नहीं है। जब नेत्र के बिना अन्तःकरण की वृत्ति घट देश में जाती है और घट के आकार की बन जाती है, उस समय घटाकार वृत्ति में घट देश की चेतना अभिव्यक्त हो जाती है। इसी को घट का प्रत्यक्ष माना जाता है।

अब प्रश्न यह है कि वेदान्ती ब्रह्म चैतन्य को प्रत्यक्ष प्रमा क्यों मानते हैं तथा उसकी अभिव्यंजक वृत्ति को प्रत्यक्ष प्रमा क्यों नहीं मानते हैं जबकि वृत्ति में ज्ञान 'शब्द' का व्यवहार देखने में आता है और वह अन्तःकरण की वृति इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न की हुई है। इस प्रश्न के उत्तर में वेदान्त दर्शन के आचार्य कहते हैं कि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'। इस श्रुति में ब्रह्म में ही वस्तुत: ज्ञान शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरी बात यह है कि अन्तःकरण अपंचीकृत पंच महाभूतों का कार्य होने से जड़ है। जड़ अन्तःकरण की वृति भी जड़ ही होगी। फिर उसको प्रत्यक्ष प्रमाकैसे कहें? उसे तो कहीं-कहीं प्रत्यक्ष प्रमा इसलिये कह दिया गया है, कि प्रत्यक्ष प्रमा ज्ञानस्वरूप ब्रह्म चैतन्य का अवच्छेदक है। अतः गौण दृष्टि से वृत्ति में ज्ञान शब्द का व्यवहार होता है. इसे पूर्वाचार्यों ने माना है।

विवरणाचार्य ने विवरण में 'अन्तःकरण वृत्तो ज्ञान त्वोपचारात '- इस वाक्य से अन्तःकरण की वृत्ति में औपचारिक दृष्टि से ज्ञान शब्द का प्रयोग बतलाया है। अतः ब्रह्म चैतन्य ही प्रत्यक्ष प्रमा है। उसकी अभिव्यक्ति के लिये इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्य अन्त:करणकी वृत्ति अवश्य माननी चाहिये; क्योंकि इसी से

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

चैतन्य की अभिव्यक्ति होती है। चैतन्याभिव्यंजक अन्त:करण की वृत्ति का कारण होने से इन्द्रियों को प्रत्यक्ष प्रमाण माना जाता है। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है |[xix]

प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है सविकल्प तथा निर्विकल्प | वेदान्त के अनुसार सत् पदार्थ ही प्रत्यक्ष का विषय हो सकता है। जब ऐसे विषय का किसी इन्द्रिय के साथ सम्पर्क होता है तभी इस विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान आत्मा को होता है। इन्द्रिय के साथ संयोग होने पर विषय की प्रतीति मात्र होती है। 'वह है' केवल इतना ही ज्ञान होता है। 'वह क्या है' इसका ज्ञान नही होता। ऐसे निर्विशेष ज्ञान को 'निर्विकल्प ज्ञान' या आलोचना ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान की दूसरी अवस्था वह है जिसमें हम पूर्वानुभव के आधार पर उस विषय का स्वरूप निर्धरित करते हैं अर्थात् वह किस प्रकार की वस्तु है, उसमें गुण या क्रिया है, उसका क्या नाम है, आदि बातों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, जैसे "वह मनुष्य है'. 'वह सुन्दर है', 'वह दौड़ता है', 'वह राम है' इत्यादि ऐसे सविशेष ज्ञान को सविकल्प प्रत्यक्ष कहते हैं।[xx]प्रत्यक्ष स्मृति से भिन्न है, क्योंकि स्मृति अतीत काल की घटनाओं की ही होती है जबकि प्रत्यक्ष में पदार्थ व मानसिक वृत्ति का वर्तमान में सम्बन्धित होना आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची :

---

[i]न्यायदर्शन वात्स्यायन भाष्प- 1/1/1

[ii]श्री केशव मिश्र ,तर्कभाषा ,पृष्ठ -18

[iii]योग कारिका-21

[iv]योगवार्त्तिक-1/7

[v]सांख्य कारिका-4

[vi]श्रीमद्भगवदगीता 16/24., गीताप्रेस ,गोरखपुर

[vii]प्रमाणवार्तिक 2/1

[viii]सांख्यकारिका-4

[ix].न्यायसूत्र- 1/1/3

[x]डॉ बद्री नाथ सिंह ,प्रमाण मीमांसा ,आशा प्रकाशन,वाराणसी ,1999

[xi]न्याय सूत्र,1.1.4

[xii]न्याय.भाष्य.1.1.4,

[xiii]न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका 1.1.5

[xiv]न्याय सूत्र ,वात्स्यायन भाष्य 1.1.4

[xv]गंगेश उपाध्याय तत्वचिन्तामणि, वेदान्त परिभाषा में उद्धृत, पृष्ठ 23

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 7.301
Volume 3, Issue 2, September 2023

[xvi] विद्यानन्द जिज्ञासु : वेदान्त परिभाषा, पृष्ठ 39

[xvii] वही

[xviii] डॉमंजु कुमारी,भारतीय ज्ञान मीमांसा,पृष्ठ 72 प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास , , ,दिल्ली,2020

[xix] वही,पृष्ठ 70

[xx] वही,पृष्ठ 72